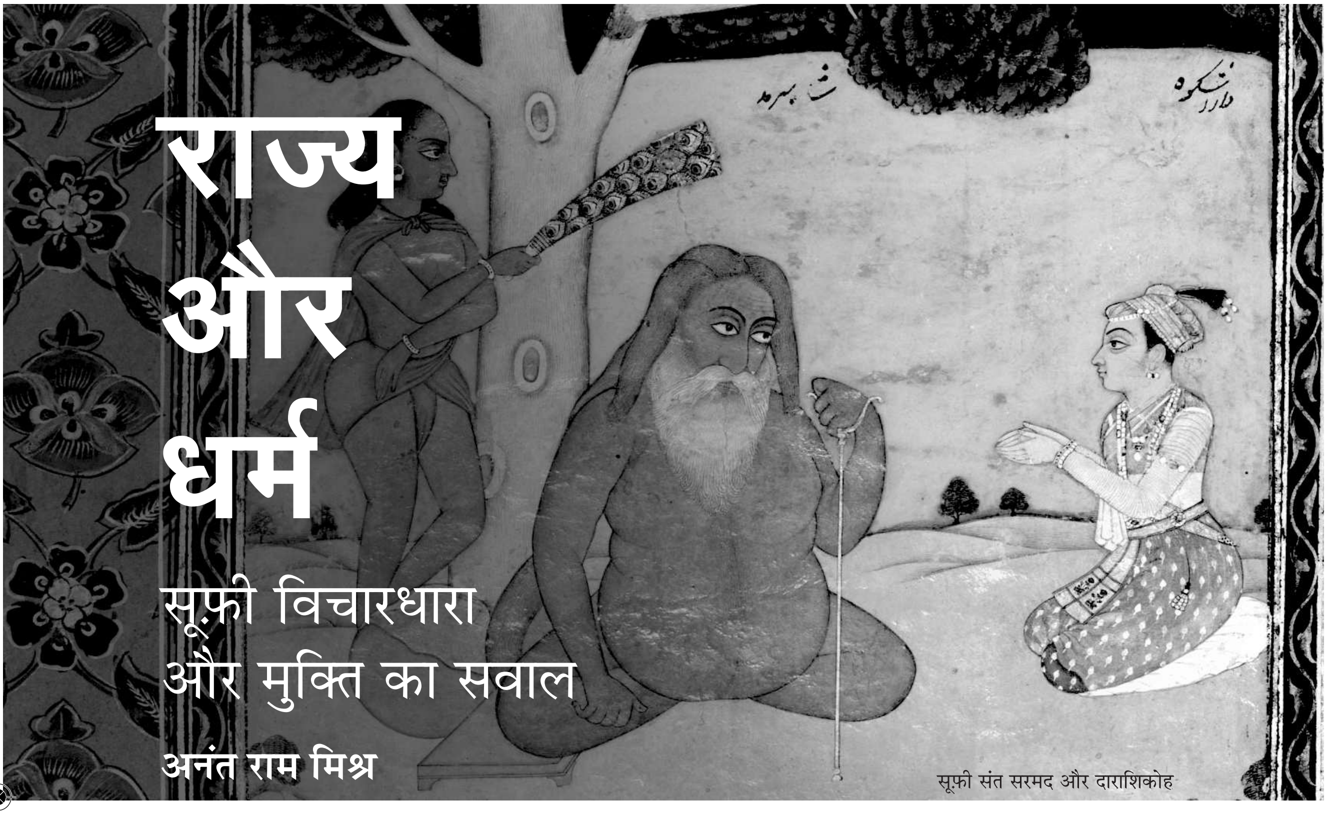
राज्य और धर्म

सूफ़ी विचारधारा और मुक्ति का सवाल

अनंत राम मिश्र



सूफ़ी संत सरमद और दाराशिकोह

धर्म और राज्य की संरचनाएँ और उनके आपसी संबंधों में इतिहासकारों और समाज-विज्ञानियों की रुचि रही है। वे इन संरचनाओं के भीतर मनुष्य और राज्य के रिश्ते को परिभाषित करने की चुनौती का सामना भी करते रहे हैं। युरोप में पुनर्जागरण के बाद उपजी विद्याओं द्वारा स्थापित मनुष्य-संबंधी चिंतन की अकादमिक परम्परा के पहले धार्मिक और लौकिक विमर्शों में मनुष्य की उपस्थिति भिन्न तरह से होती थी। उत्तर-पुनर्जागरण विद्याओं के तहत मनुष्यों की बात राष्ट्र के दायरे में होने लगी— जैसे, इटली के लोग, अरब के लोग या एशिया के लोग। थोड़े समय बाद राष्ट्र और मनुष्य एक हो गये— जैसे, पोलिश, इतालवी, तुर्की या भारतीय। लेकिन चिंतन के इस दायरे में मनुष्यों के सभ्यतागत अनुभव सम्बोधित होने से रह गये।

जब उपनिवेशित रह चुके देशों पर बात हुई तो उनमें पश्चिमी ज्ञान-परम्पराएँ और उनके अनुभव भर दिये गये। इसे भार के उदाहरण के रूप में समझ सकते हैं। भारत को अंग्रेज़ों ने ग़ुलाम बनाया और उसे अनूदित पाठ और शब्दकोश थमाए। बर्नार्ड कॉह्न औपनिवेशिक शासन की इस मंशा को उजागर करते हुए कहते हैं कि ब्रिटिश अधिकारियों ने भारत में प्रचलित पुरानी भाषाओं, जैसे संस्कृत, फ़ारसी और अरबी के साथ कई ग्रामीण भाषाओं को भी सीखना प्रारम्भ किया। व्याकरणों, शब्दकोशों, निबंधों, पुस्तकों एवं अनुवादों की रचना की गयी।[1] भारतीय भाषाओं से इसी दौरान अंग्रेजों ने एक नये प्रकार के तंत्र का निर्माण किया। इन प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि भारतीय ज्ञान युरोपीय परियोजना के रूप में परिवर्तित होने लगा।[2] यह परियोजना अपने अवशेषों के साथ अभी भी जारी है।

---

[1] बर्नार्ड कॉह्न (2011).

[2] गीता धर्मपाल-फ़्रिक़ और अन्य (2015) : 263-64.

2014 में दिल्ली में नयी केंद्र सरकार आयी और कांग्रेस सहित मार्क्सवादी पार्टियों की हार हुई। इसके बाद कुछ लोगों ने जल्दबाज़ी में कहना शुरू किया कि अब हिंदी और संस्कृत के पाठों का भारतीय समाज की निर्मिति समझने में प्रयोग किया जाएगा क्योंकि सत्तारूढ़ दल की दिलचस्पी इन दोनों भाषाओं को बढ़ावा देने में हैं। लेकिन मेरा मानना है कि केवल हिंदी या संस्कृत में लिख देने भर से कुछ भारतीय नहीं हो जाता। भारतीय जनता पार्टी की सांस्कृतिक कल्पना युरोपीय सांस्कृतिक कल्पनाओं से अलग नहीं है। इसके मुताबिक़ यह पार्टी इन भारतीय भाषाओं में वही ज्ञानमीमांसा भरने का प्रयास करेगी जो युरोप ने ग़ैर-युरोपीय मुल्कों को विरासत में थमाई है।

जिस तरह भाजपा भारतीय कल्पनाशीलता से दूर है, उसी तरह मुस्लिम रूढ़िवाद भी अरबी, फ़ारसी और उर्दू की अपनी मौलिक कल्पनाशीलता के पास जाने से डरता है। उसे सबसे ज़्यादा डर तो सूफ़ी साहित्य से लगता है। उसे सूफ़ियों से डर लगता है। यह डर इतना घना और गहरा है कि मई, 2016 में बांग्लादेश के राजशाही ज़िले में सूफ़ी संत मोहम्मद शहीदुल्लाह की हत्या कर दी गयी। जून, 2016 में पाकिस्तान में सूफ़ी गायक अमजद साबरी की हत्या कर दी गयी। सवाल यह है कि ये दो हत्याएँ क्यों की गयीं ? पुलिस की निष्पक्ष जाँच दोषियों को निश्चित ही पकड़ लेगी, लेकिन ये हत्याकाण्ड केवल दो अपराध-भर नहीं हैं। ये तो विभिन्न परतों में लिपटे शताब्दियों पुराने उस इतिहास की अनुगूँज हैं जिसमें मनुष्य का सच, ईश्वर, और ईश्वर से उसके रिश्ते को परिभाषित करने की कोशिश की गयी थी।

मनुष्य के आधारभूत सच को धर्म और राज्य के बीच से निकाल कर उसे मुक्त करने की एक पहल सूफ़ी संतों ने कई शताब्दियों पहले की थी। उन्होंने प्रेम को मानव-जीवन का आधार माना और धन-दौलत, ऐश्वर्य एवं सत्ता के दम्भ को दरकिनार कर दिया। जिस ऐश्वर्य और सत्ता को मध्यकालीन समाज में शक्ति का स्रोत समझा जाता था, उसे सूफ़ी संतों ने मिट्टी के ढेले से ज़्यादा तवज्जो नहीं दी। इससे शासक वर्गों की न केवल मुख़ालिफ़त हुई, बल्कि उनके बरअक्स आम जनमानस, ग़रीब-ग़ुरबों और मेहनतकशों के जीवन को एक नैतिक आधार मिला। सूफ़ी संतों ने लालच की निंदा की— चाहे वह देह को पाने का लालच हो या अशर्फ़ियाँ इकट्ठा करने की हवस हो। उन्होंने ग़रीबी के जीवन को मजबूरी नहीं, बल्कि एक जीवन-दृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया। इससे शासक वर्गों को परेशानी का सामना करना पड़ा। उनकी जीवन-शैली को उत्पीड़क जीवन-शैली के रूप में प्रस्तुत करने में भी सूफ़ी संतों को सफलता मिली।

बहुत बाद में, जब भारत की आज़ादी की लड़ाई चल रही थी तो गाँधी ने भी यही किया और पूरी दुनिया में यह संदेश दिया कि अंग्रेज़ शासकों की जीवनचर्या किस प्रकार उत्पीड़क है और भारतीय जनता के ख़ून-पसीने की कमाई पर आधारित है। मध्यकाल में स्पेन से लेकर गुलबर्गा तक सूफ़ी संत यह संदेश देने में कामयाब रहे थे। ऐसी बात नहीं कि सूफ़ी संत हमेशा कामयाब रहे हों, लेकिन वे हमेशा नाकाम भी नहीं हुए। उन्होंने राज्य और धर्म की सांस्थानिक जकड़बंदी से अपने समय के लोगों को मुक्त कराने का सपना देखा था। इसके लिए उन्होंने स्थापित राज्य और धर्मसत्ता से विरोध मोल लिया जिसकी क़ीमत उन्हें कभी-कभार अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। मोहम्मद शहीदुल्लाह और अमजद साबरी की हत्या को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि हम अरब के रेगिस्तानों से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैली उस सूफ़ी संस्कृति पर बात करें जो लोगों में शक्तिशाली के विरोध में खड़े होने और आम जन के दिल की बात करने का माद्दा रखती थी।

I

सूफ़ीवाद के अनुभवों पर एक व्यापक साहित्य मौजूद है जिसमें सूफ़ी संतों अतींद्रिय अनुभवों से लेकर राज्य से उसके संबंधों पर बात की गयी है। अभी हाल ही में गीता धर्मपाल-फ़िक्र और उनके साथियों ने आधुनिक भारत में हो रहे अध्ययनों की अवधारणाओं पर एक किताब सम्पादित की है। इसमें 'सूफ़ी' पर भी एक प्रविष्टि है। इसमें सूफ़ीवाद को ख़ूबसूरत तरीक़े से उसकी विभिन्न अर्थछायाओं के साथ पेश किया गया है। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि यदि आप आधुनिक भारतीय समाज की बनावट समझना चाहते हैं तो उसके लिए सूफ़ीवाद एक महत्त्वपूर्ण शुरुआत होगी। इस पुस्तक का शीर्षक है *की कांसेप्ट इन मॉडर्न इण्डियन स्टडीज़*। लेकिन सूफ़ीवाद के लिए मैं इस राजनीतिक चौहद्दी को नहीं मानता और अपने को सुधार कर कहना चाहता हूँ कि सूफ़ीवाद इससे ज़्यादा है। वह मॉडर्न इण्डियन स्टडीज़ के लिए तो ज़रूरी है ही, बांग्लादेश, पाकिस्तान और ग़ैर-दक्षिण एशियायी मुल्कों के लिए भी समझने की चीज़ है।

दक्षिण एशिया में धर्म और सत्ता की अनुगूँज

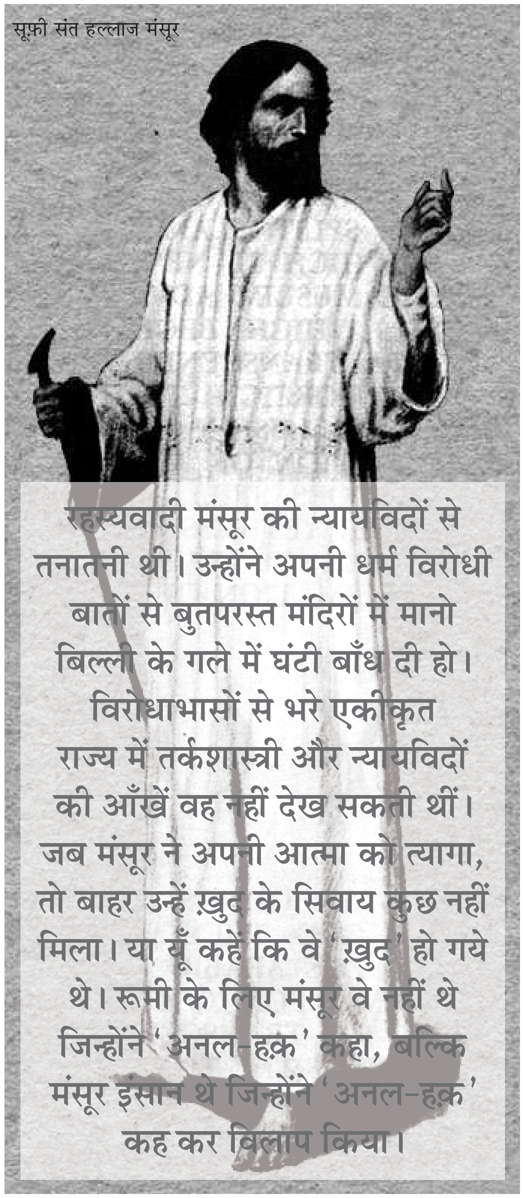
दसवीं शताब्दी इस्लाम की अंदरूनी बनावट, खींचतान और बाहरी दुनिया से उसके सम्पर्क की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शताब्दी रही है। इस शताब्दी में हम पहली बार उन लोगों को फाँसी पर चढ़ते पाते हैं जो इस्लाम के अनुयायी तो थे लेकिन जिन्होंने इस्लाम से जुदा अपनी राय पेश करने की कोशिश की। पवित्र क़ुरआन से परे इस्लाम का रूप बन रहा था, लेकिन उस पर कोई एक समरूप राय नहीं बनाई जा सकती थी। सूफ़ी अपनी राय रख रहे थे। यह राय इस्लाम के उस प्रारूप से मेल नहीं खाती थी जिसका सहारा लेकर शासकों ने अपनी वैधता प्रजा पर आयद करने की कोशिश की थी। इसी दौर में इस्लाम अपना प्रसार भौगोलिक और राजनीतिक रूप से कर रहा था। 732 में युरोप में इस्लाम का प्रवेश रोक दिया गया। इस घटना को जिहाद-ए-असग़र या लघु जिहाद कहा जाता है। दूसरी तरफ़ इसने 922 में मुस्लिम युग शुरू होने के बाद अपनी फ़तह घोषित करने लिए तीन सौ वर्षों का समय लिया। इसे जिहाद-ए-अक़बर (बड़ा जिहाद) कहा जाता है। इस समय हल्लाज मंसूर ने बग़दाद में फाँसी के तख़्ते से 'अनल-हक़' (मैं ही सत्य हूँ) का ऐलान किया। हल्लाज बर्बरतापूर्वक मारे ही नहीं गये, उनके शरीर को काट कर और जला कर टिगरिस नदी में फेंक दिया गया। इस प्रकार जिहाद-ए-असग़र की परिणति अपमान में, जबकि जिहाद-ए-अकबर की परिणति दीन में हुई— सृष्टि की तत्त्वमीमांसा में।[3]

मंसूर उस परम्परा के बेहतरीन नुमाइंदे थे जो पैग़म्बर के इंतक़ाल के तुरंत बाद शुरू हुई थी। पुराने और नये रहस्यवादी दर्शनों के परिणाम के तौर पर इस परम्परा में उन्मत्त रहस्यवादियों की अल्लाह के प्रति दीवानगी और उसमें मिल जाने की ललक विद्यमान थी। सातवीं शताब्दी में सूफ़ी हसन बसरी और उन्हीं की समकालीन राबिया ने एक विश्व-दृष्टि विकसित करने का प्रयास किया। यह विश्व-दृष्टि इस्लाम को अनुभवमूलक तरीक़े से सामान्य लोगों के बीच में ले जाने का इरादा रखती थी। राबिया की दैवी प्यार की अवधारणा देह और धन से प्यार के अलगाव के लिए जानी जाती है। इसमें 'स्व' के अस्तित्व का विलोपन था। राबिया इसे करने में कामयाब रहीं। अल्लाह के लिए उनकी मुहब्बत सिर्फ़ अल्लाह के लिए थी जिसे उन्होंने किसी दूसरे से साझा करने से इंकार किया। उनकी यह मुहब्बत पैगम्बर को भी नहीं मिल सकती थी। न जहन्नुम का डर और न ही जन्नत की इच्छा राबिया के अल्लाह के प्रति प्यार को डगमगा सकी। ग़ुलाम की तरह पैदा हुई राबिया अब देवत्व की

[3] मार्गरेट स्मिथ (2010).

रानी थी जिसमें अल्लाह के सृजनात्मक और विमोचक दोनों गुण शामिल थे। प्यार की इस संकल्पना ने फ़ना (नश्वरता) और बक़ा (ईश्वर में स्थापित होना) की नींव रखी। ये दो पद सूफ़ीवाद को उसके वैचारिक विकास की ओर ले गये।

मार्गरेट स्मिथ के अनुसार राबिया के लिए प्यार का मतलब बाक़ी सब छोड़ कर अल्लाह पर केंद्रित होना था।[4] ब्रह्मचर्य का जीवन जीने वाली राबिया को रहस्यवादियों और अमीरों दोनों द्वारा वैवाहिक संबंध के प्रस्ताव मिले। राबिया ने इंकार कर दिया। इस इंकार में दैवी प्यार की झलकियों को देखा जा सकता है। हसन ने राबिया से कहा, 'क्या तुम्हें पति की चाहत है?' उसने जबाव दिया, 'विवाह का नाता उसी से हो सकता है जिसका अस्तित्व हो। यहाँ तो अस्तित्व ही कहाँ है? मैं अपने आप की ही नहीं हूँ— मैं तो अल्लाह हूँ और उसके हुक़्म के साये के नीचे हूँ। तुम्हें उसकी इजाज़त लेनी होगी।' उन्होंने राबिया से पूछा— तुम इस ओहदे पर कैसे पहुँची? राबिया का जबाव था— उसमें खोकर मैं सब कुछ पा गयी।[5] और इस तरह राबिया मुहब्बत की सल्तनत की स्रोत और मालकिन बन गयी। बहुत बाद में इसी पहलू को उसके जीवन में देखा जा सकता है जहाँ स्त्री-मुक्ति और ईश्वर से उसके संबंधों की नवीन व्याख्या दिखाई पड़ती है।



सूफ़ी संत हल्लाज मंसूर

रहस्यवादी मंसूर की न्यायविदों से तनातनी थी। उन्होंने अपनी धर्म विरोधी बातों से बुतपरस्त मंदिरों में मानो बिल्ली के गले में घंटी बाँध दी हो। विरोधाभासों से भरे एकीकृत राज्य में तर्कशास्त्री और न्यायविदों की आँखें वह नहीं देख सकती थीं। जब मंसूर ने अपनी आत्मा को त्यागा, तो बाहर उन्हें ख़ुद के सिवाय कुछ नहीं मिला। या यूँ कहें कि वे 'ख़ुद' हो गये थे। रूमी के लिए मंसूर वे नहीं थे जिन्होंने 'अनल-हक़' कहा, बल्कि मंसूर इंसान थे जिन्होंने 'अनल-हक़' कह कर विलाप किया।

सूफ़ीवाद के आरम्भिक दौर के दूसरे सूफ़ी संत इब्राहीम बिन अदहम थे जो अपने राज्य को त्याग देने और संन्यासी बन जाने के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने ज़िंदगी में विरोधाभासों का सामना किया जिसने उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत बनाया। राज्य और शासन पर सोचते हुए उन्होंने दोनों का त्याग कर दिया। इस -प्रकार वे उस व्यवस्था में शामिल नहीं हुए जो उस समय अपने आपको दुनिया की सबसे आला दर्जे की व्यवस्था होने का दावा करती थी। एक बार वे जब शिकार कर रहे थे तो एक बारहसिंघे की आवाज़ ने कहा कि उन्होंने मुझे तुम्हारा शिकार करने को भेजा है, न कि तुम मेरा शिकार कर लो।[6] क्या तुम इसी के लिए बनाए गये हो या तुम्हें ऐसा करने के लिए आदेश दिया

[4] वही.
[5] पॉल लॉसेंस्की (2009) : 104.
[6] वही : 120.

गया है?[7] इस आवाज़ ने उन्हें उनकी औक़ात बता दी और वे लघुता की ओर मुड़ गये। जब शासक लोग बड़ी-बड़ी पदवियों से ख़ुद को ही नवाज़ रहे थे और भू-क्षेत्रों और मनुष्यों की विजय की डींग हाँक रहे थे, तो इब्राहीम बिन अदहम ने आत्माधिक्कार का रास्ता अख़्तियार किया।[8] वास्तव में सूफ़ियों की जीवन-शैली अपने दौर के शासकों की भोग-विलासितापूर्ण जीवन-शैली के विरोध में एक प्रति-संस्कृति रच रही थी। हम आगे देखेंगे कि इसे शासक वर्ग पचा नहीं पाया। इसलिए प्रायः सूफ़ी संत सत्ता के निशाने पर आते रहे। फ़ारूक़ी ने इब्राहिम बिन अदहम के बारे में हुजवेरी के कश्फ़उल महजूब के हवाले से निम्नलिखित क़िस्सा उद्धृत किया है— 'एक मौक़े पर, मैं भारी बारिश के बीच एक गाँव में पहुँचा। थेगली लगे मेरे कपड़ों ने मुझे ठण्ड से बचा लिया। मैं एक मस्जिद में गया लेकिन मुझे प्रवेश देने से इंकार कर दिया गया। तीन और मसजिदों पर, जहाँ मैंने शरण माँगी, यही हुआ। निराशा में ठण्ड ने मेरे दिल पर अपनी पकड़ और मज़बूत कर ली। मैंने एक ग़ुसलख़ाने में प्रवेश किया और लबादे को उतार कर चूल्हे पर रख दिया, धुँए ने मुझे ढँक लिया तथा मेरे चेहरे और कपड़ों को काला कर दिया। तब मैंने पूरी संतुष्टि महसूस की।' फ़ारूक़ी इस क़िस्से को प्रतीकात्मक क़िस्म का ख़ामोश संदेश देता हुआ पाते हैं जिसमें मस्जिद संगठित धर्म का प्रतिनिधित्व करती है जबकि ग़ुसलख़ाना और साधक के कपड़े और शरीर का धुएँ से काला होना दोष को स्वीकार करने की उसकी इच्छाशक्ति को दिखाता है। बाहरी दुनिया उसे पापी की तरह देखती है।[9]

आठवीं शताब्दी में हबीब आज़मी, मलिक बिन दिनार और अबू हनीफ़ा जैसे मशहूर सूफ़ी संत हुए। यद्यपि शुरुआत में इन सभी को सूफ़ी की तरह सम्बोधित नहीं किया गया। आठवीं शताब्दी में, जब सूफ़ी मत के बीज बोये जा रहे थे, इन्हें एक विशिष्ट पहचान मिली। इसी दौर में इब्न-अल-मुबारक़ ने किताब-ए-जहद या तपस्वियों की किताब लिखी। इसी शताब्दी में पहली ख़ानकाह रमला (यरूशलम के पास) में स्थापित की गयी, वह भी एक ईसाई पादरी द्वारा।[10] इस काल के सूफ़ियों को आरबेरी ने संन्यासियों और वलियों की तरह वर्णित किया है जिसका मतलब है, 'किसी का अपने आप में होना वास्तव में दैवी शांति में होना है।[11] यह धर्म की संरचना के भीतर से एक ऐसे व्यक्ति का प्रादुर्भाव था जो अपने बारे में सोच रहा था, ईश्वर से अपने संबंधों को परिभाषित करने का प्रयास कर रहा था। सूफ़ीवाद ने उसकी मदद की।

इस प्रक्रिया में अनुभवमूलक तरीक़े से सूफ़ीवाद की मुख्य अवधारणाओं का विकास शुरू हुआ। यह नवीं शताब्दी की बात है। इस काल में रहस्यमय मार्गों और उनके चरणों व स्थितियों में 'अल्लाह का ज्ञान' (मरिफ़त), एकीकरण (तौहीद) जैसे सिद्धांतों की बात की गयी। इस शताब्दी के मुख्य रहस्यवादी फ़ुज़ैल इब्न अयाज़ थे जिसने एक औरत की मुहब्बत में पड़ कर डकैती का पेशा अपना लिया था। एक दिन रेगिस्तान से गुज़र रहे कारवाँ का एक सदस्य क़ुरआन की एक आयत बयाँ कर रहा था। इसका अर्थ था : ईमान रखने वालों के लिए अभी तक वह वक़्त नहीं आया कि ख़ुदा की याद में उनके दिल नरम हो जाएँ (क़ुरआन, 57: 16)। इस आयत ने अयाज़ की ज़िंदगी बदल दी।

---

[7] अल बिन उस्मान अली-हुजवेरी : 103.

[8] एन.आर. फ़ारूक़ी (2007) : 39.

[9] वही : 19.

[10] एस.ए.ए. रिजवी (1978) : 34.

[11] ए.जे.अरबेरी (2007).

II

सूफ़ीवाद की तत्त्वमीमांसा में दो संतों का वैचारिक योगदान विशेष उल्लेखनीय है। एक थे शेख़ ज़ुन्नून मिस्त्री और दूसरे थे बायजिद बस्तामी। अत्तार शेख़ ज़ुन्नून मिस्त्री के जीवन में घटी एक महत्त्वपूर्ण घटना का हवाला देते हैं, 'अपनी यात्राओं के दौरान मैं एक औरत से मिला। मैंने उससे मुहब्बत की हदों के बारे में पूछा। उसने कहा, 'बेदाम मूर्ख! मुहब्बत की कोई हद नहीं होती।' 'क्यों?', मैंने पूछा। उसने जबाव दिया, 'क्योंकि महबूब के पास कोई हद नहीं होती।'[12] प्यार के लिए रोती उसकी रूह उसकी मौत पर ख़ामोश थी। ये शब्द उसके माथे पर ख़ुदे पाए गये— 'ख़ुदा ने इससे मुहब्बत की, जो ख़ुदा की मुहब्बत में मरा, इसे ख़ुदा ने मारा।'[13] वह किसी और द्वारा नहीं बल्कि अल्लाह द्वारा मुहब्बत में मारा गया शहीद था। मारिफ़ा का सिद्धांत, अल्लाह का सहज ज्ञान या इल्म के विपरीत आत्मिक ज्ञान अर्थात् विवादित अध्ययन सर्वप्रथम उनके द्वारा ही प्रतिपादित किये गये।[14]

नवीं शताब्दी में सूफ़ी मत की दूसरी प्रमुख शख़्सियत बायज़ीद बस्तामी थे। वे एक विरोधाभासी व्यक्तित्व के स्वामी थे। धर्मगुरुओं के विपरीत उनके वक्तव्य काफ़ी उलझे हुए लगते थे। उन्होंने एक बार कहा, 'मेरा इस्तक़बाल करो। देखो मेरी शान कितनी महान है!' और फिर कहा, 'मैं तुम्हारा अल्लाह हूँ।' और इसके बाद यह भी कहा कि 'मेरी पताका मुहम्मद की पताका से बड़ी है।' इस तरह से रहस्यमय की उद्‌गारों ने विवादों को आमंत्रित किया और विभिन्न हलक़ों में इसकी निंदा की गयी। अत्तार कहते हैं, 'दूसरे शब्दों में बायज़ीद कुछ भी नहीं हैं, उनका कोई योगदान नहीं है, इसलिए उनका वर्णन कैसे किया जा सकता है? बायज़ीद एक अदृश्य धूल-कण की तरह हैं। उनके बारे में पूछने से कोई मतलब निकलता है? क्या उन्हें अल्लाह या नेकी में विश्वास है? ये सब सृजनशील गुण हैं। अपने आपको खुदा के साँचे में ढाल लो।'[15] बायज़ीद ने अपने-आपको राग-द्वेष से मुक्त कर एक साधारण जन की तरह ढाल लिया। उनके प्रवचन बस ऐसे ही चले आ रहे थे— पता नहीं कहाँ से। बायज़ीद के बयान वास्तव में मंसूर के क्रांतिकारी प्रवाहों और इसके संजीदा परिणामों का पूर्वानुमान भी था। सूफ़ीवाद में फ़ना (नश्वरता) का सिद्धांत बायज़ीद द्वारा स्थापित किया गया जो अबू सईद द्वारा बक़ा (चिर स्थापत्य) तक बढ़ाया गया। सादगी पसंद वली जुनैद ने इसे तौहीद-ए-इलाही (एकेश्वरवाद) तक पहुँचाया।

अब्दुल हुसैन नूरी मंसूर के व्यक्तित्व के एक दूसरे पहलू कहे जा सकते हैं। जब वे रात में उपदेश देते थे तो उनके मुँह से रोशनी निकलती थी और कक्ष रौशन हो जाते थे। यह भी कहा जाता है कि रेगिस्तान में उनके पास एक ध्यान-कक्ष था जहाँ वे पूरी रात इबादत करते थे। लोग रात में वहाँ उन्हें देखने जाते तो वे देखते कि उनके ध्यान-कक्ष से एक रोशनी चमकती हुई ऊपर की ओर उठ रही है।[16] इन्हीं कारणों से वे नूरी के रूप में जाने जाते हैं। वे पवित्र मुहब्बत, मुहब्बा को अल्लाह से मिलने का रास्ता बताने वाले पहले सूफ़ी थे।[17] उन्होंने कई चमत्कार दिखाए जिसके लिए जुनैद ने उनकी निंदा की। अत्तार ने उनके जीवन की एक घटना का उल्लेख किया है। यह बताया गया है कि नूरी किसी के साथ बैठे थे और दोनों रो रहे थे। जब वह आदमी चला गया, नूरी अपने साथियों की तरफ़ मुड़े और पूछा— क्या आप लोगों ने पहचाना कि यह कौन था? उन लोगों ने कहा— नहीं। इस पर नूरी ने कहा— वह शैतान था। वे शैतान की कर्मों की पुनर्गणना कर रहे थे और उसकी ज़िंदगी की कहानी

---

[12] फ़रीदुद्दीन अत्तार (2009) : 173.
[13] हुजवेरी, वही : 100.
[14] एनेमेरी शिमेल (1975) : 43.
[15] फ़रीदुद्दीन अत्तार (2009) : 203.
[16] फ़रीदुद्दीन अत्तार (2009) : 367.
[17] लुई मैसिओ (1983) : 85.

बता रहे थे। जैसा कि आपने देखा, वह वियोग के दर्द में विलाप कर रहा था और रो रहा था। मैं भी वियोग की पीड़ा में रो रहा था।[18]

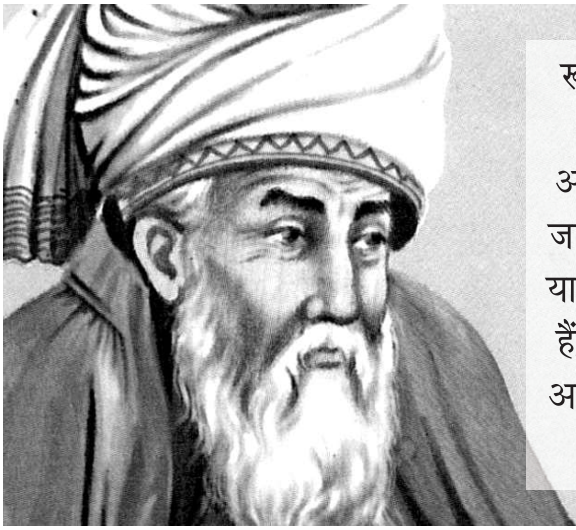
जुनैद की तौहीद हल्लाज मंसूर द्वारा नूरी के मुहब्बा के ज़रिये बुनियादी रूप से सामने आयी। मंसूर के बारे में अत्तार कहते हैं कि वे अपने जीवन और मृत्यु में रहस्य ओढ़े हुए थे। इस्लाम के विद्वानों और विधिवेत्ताओं के लिए वे पेचीदा थे। अपने समय के शासक वर्ग के लिए वे एक ऐसा ख़तरा थे जिसे मुहब्बत की हिलोरें मारते समुद्र ने डुबो दिया। ऐसे शख़्स को मार ही दिया जाना था। कश्मीर से लेकर उत्तर प्रदेश, यहाँ तक कि भारत के सुदूर ग्रामीण इलाक़ों में भी उनके बारे में प्रचलित कहानियाँ सुनी जाती हैं और गीत गाये जाते हैं। ईसा और इमाम हुसैन के सिवाय किसी और शहीद ने लोगों के दिलों में इतनी बड़ी जगह नहीं बनायी।

ईरान के वैस्त के रहने वाले मंसूर ने सोलह वर्ष की उम्र में इस्लामिक धर्मशास्त्र की शिक्षा पूरी की। इसके बाद वे बसरा गये और अमर मक्की के क़रीबी और जुनैद के मुरीद बने। कुछ साल बाद वे अपने दिल को पाक करने एक साल के लिए मक्का चले गये। बग़दाद लौट कर उन्होंने सूफ़ी लबादा पहनना छोड़ दिया। जगह जगह घूमते हुए लोगों को 'दिल की बातें' बताते रहे और इस प्रकार उन्हें 'दिल का धुनिया' का लक़ब मिला। बग़दाद से वे हिंदुस्तान आये और फिर हज़ के लिए मक्का चले गये। वे फिर बग़दाद लौटे। उन पर राजद्रोह का आरोप लगा कर क़ैद कर लिया गया। जेल में उन्होंने अपनी आख़िरी रचना *तसिन अल अजल* पूरी की। इसमें उन्होंने सृष्टि के इतिहास और रहस्य की व्याख्या की। 'अनल-हक़' के ज़रिये सर्वोच्च प्यार के ऐलान के लिए उन्हें 922 ईस्वी में मार डाला गया। मंसूर के बयान यानि तथाकथित धर्मविरोधी कथ्य ने अपने समय और भविष्य की पीढ़ी के सूफ़ियों के सामने इसकी बारीक़ियों को समझने के लिए बड़ी चुनौती खड़ी कर दी। क्या मंसूर का 'अनल-हक़' कहना सही था? ख़ुद को 'मैं' से ख़ाली कर मंसूर ने अपने आपको सत्य के अंदर विलुप्त कर दिया था। अब केवल सच ही बोल रहा था। इसे इबलीस के सवाल पर मंसूर की प्रतिक्रिया से समझा जा सकता है। जब उन्हें फाँसी दी जा रही थी तो शैतान ने आकर कहा कि जब तुमने 'मैं' उच्चारित किया तो मैंने उसका अनुसरण किया। यह कैसे हो सकता है कि तुम्हारे इस 'मैं' का नतीजा दया है, और मेरे लिए इसका नतीजा लानत का है?

मंसूर किस तरह के होशोहवास में थे जब उन्होंने 'अनल-हक़' कहा? *गुलशन-ए-राज़* में शबिस्तरी ने इसे इस तरह व्याख्यायित किया है— 'मंसूर ने ऊन की धुनाई करने वाले की तरह अपनी आत्मा को धुन दिया। वही कह सकता था कि मैं ही सत्य हूँ। जब इंसान अपना शाश्वत पक्ष लेता है, अर्थात् 'नहीं होना' चाहता है तो कुछ भी नहीं बचता है। जब अल्लाह उससे अपनी वे सारी चीज़ें निकाल लेता है जो उससे ताल्लुक़ रखती हैं तो सारी चीज़ें अपनी वास्तविक शून्यता में वापस चली जाती हैं। प्रत्यक्ष का अस्तित्व केवल एक भ्रम है जैसा कि हम गूँज, प्रतिबिंब, भूत और भविष्य का समय और क्षणिक घटनाओं के मामले में देख सकते हैं जिसमें सभी तत्त्व बाह्यता या वस्तुनिष्ठता में मौजूद रहते हैं।'[19] रहस्यवादी मंसूर की न्यायविदों से तनातनी थी। उन्होंने अपनी धर्म विरोधी बातों से बुतपरस्त मंदिरों में मानो बिल्ली के गले में घंटी बाँध दी हो। विरोधाभासों से भरे एकीकृत राज्य में तर्कशास्त्री और न्यायविदों की आँखें वह नहीं देख सकती थीं।[20] जब मंसूर ने अपनी आत्मा को त्यागा, तो बाहर उन्हें ख़ुद के सिवाय कुछ नहीं मिला। या यूँ कहें कि वे 'ख़ुद' हो गये थे। रूमी के लिए मंसूर वे नहीं थे जिन्होंने 'अनल-हक़' कहा, बल्कि मंसूर इंसान थे जिन्होंने 'अनल-हक़' कह

---

[18] फ़रीदुद्दीन अत्तार (2009) : 373.
[19] ई.एच. विनफ़ील्ड (1880) : xiii .
[20] एनेमेरी शिमेल (1994) : 7.



रूमी कहते हैं— 'तर्क ऊँट को जोतता है और ऊँट आपको/ इस या उस राह ले जाता है/ इसे चाहे पसंद करो या न करो/ संत तर्कों के तर्क हैं/ वे मानो किसी रस्सी में/ आदमियों के तर्क का कारवां खींचते जा रहे हैं।'

कर विलाप किया। जो इंसान फाँसी पर चढ़ा वह मंसूर नहीं था— ऐसी कल्पना बेअक़्ल लोग करते हैं।[21] दूसरे सूफ़ी इब्न अता के मुताबिक़ मंसूर की उच्च आध्यात्मिक दशा नूरी, जुनैद तथा शिबली की कुल आध्यात्मिक दशा से अधिक हो सकती है। उनकी आध्यात्मिक दशा ऐतिहासिक और तत्वमीमांसीय दोनों दृष्टि से सूफ़ीवाद के पहले चरण की परिणति थी।[22]

III

शिमेल के अनुसार मंसूर के समय में सूफ़ीवाद का पहला चरण पराकाष्ठा पर पहुँचा और फिर एकीकरण का दौर शुरू हुआ।[23] लेकिन यह एक कठिन संक्रमण था। जो तूफ़ान मंसूर के 'अनल-हक़' के बहाव से उठा था, उसका ख़ामोशी से अनुकरण किया गया। लेकिन बाद के सूफ़ियों की अभिव्यक्ति ख़ामोश नहीं थी। शिबली ने भी इस तरह का विरोधाभासी बयान दिया। जैसे, 'मैं बोल रहा हूँ और सुन रहा हूँ, दोनों जहाँ में भला कौन है? लेकिन मैं हूँ, जहन्नुम की आग मुझे छू नहीं पाएगी और मैं इसे आसानी से बुझा सकता हूँ।'

ग्यारहवीं शताब्दी में सूफ़ियों ने स्वयं सूफ़ीवाद पर लेखन किया। यह सूफ़ीवाद की वैचारिक मज़बूती और व्याख्या, रूढ़ियों से समझौता, सिलसिलों का उत्थान, सूफ़ियों के लिए आचार संहिता के निर्माण का दौर था। यही वह दौर था जब ग़ज़ाली और अब्दुल क़ादिर जीलानी ने इस्लाम धर्म और तत्वमीमांसा को बारीकी से एक कर दिया। हालाँकि बारहवीं शताब्दी के बाद सनाई, अत्तार, रूमी, शबिस्तरी और हाफ़िज शिराजी के फ़ारसी काव्य में सूफ़ीवाद थोड़ा व्यापक तरीक़े से समृद्ध हुआ। मुहब्बत को रहस्यवाद की धुरी के रूप में अपना कर फ़ारसी काव्य ने दिल खोल कर रख देने वाले चरित्र गढ़े और दूसरे देशों में इसका प्रभाव बिजली की गति से फैला। साथ ही मुहब्बत का उत्साहपूर्ण और जोरदार समर्थन का सिर्फ़ एक मतलब था— एकात्म का नाश और दिव्य भावना के साथ एकता। यह शताब्दी काव्यात्मक आख्यानों के माध्यम से मुहब्बत के रहस्यों और इसके तत्वमीमांसा को खोजने में सफल रही। यह रूमी थे जिन्होंने रूप और अर्थ के बीच के संबंध की पेचीदगी के बारे में बताया

[21] रेनॉल्ड ए. निकल्सन (1995) : 143, एनेमेरी शिमेल : 77.
[22] एन.आर. फ़ारूक़ी (2014) : 18–20.
[23] एनेमेरी शिमेल : 77.

अर्थात् पवित्र क़ुरआन में उसका उसके आवरण और मतलब की जानकारी दी।[24] मुहब्बत की अवधारणा, जो राबिया के दौरान उत्पन्न हुई, मंसूर में लबालब भर गयी तथा फ़ख़रुद्दीन को 'ला इलाह इलल्लाह ए इश्क' अर्थात् नहीं है ख़ुदा सिवाय इश्क़ है— कहने तक ले गयी।[25]

तेरहवीं शताब्दी के दौरान संगीत, नृत्य, समाँ इत्यादि जैसे चलन मतवादी व्याख्याओं से आगे निकल आये। इसका भी श्रेय रूमी को ही जाता है। उन्होंने मानव मन की अतल गहराइयों को मापा और क़ुरान के वास्तविक अर्थ तक पहुँचने के लिए उसे कई हिस्सों में बाँट कर सही माने (अर्थ) इकट्ठा किये। इंसान के अल्लाह के सहायक के रूप में देखकर रूमी उसे वास्तविक अलगाव की याद दिलाते हैं— 'इस बाँसुरी को सुनो/ इसके छेदों में फूँक मारो/ अलगाव की पूँछ को खोल दो इसकी/ ... / बाँसुरी सुनाती है कहानी/ लहू की और एक धूमिल तलाश की/ मुहब्बत के अफ़सानों के पीछे भागते हैं दीवाने।'[26] पाप के बजाय रूमी पीड़ित आत्माओं के लिए अलगाव को मूल ज़िम्मेदार मानते हैं। रूमी की आयतों का उनके निकट सहयोगियों के बीच ही नहीं, बल्कि अगली पीढ़ी के सूफ़ियों पर भी कीमियागर का असर पड़ा। यदि बाँसुरी इनकी कविताओं को सुना रही है तो मुहब्बत रहस्यवादियों को द्वंद्व से ऊपर उठ कर उन्हें अपने गले लगाने के लिए आमंत्रित कर रही है। मुहब्बत ने सिनाई के पर्वतों को अपनी जगह से खिसका दिया और उसने मूसा को बेहोश कर दिया।[27]

रूमी ने गम्भीर लहज़े में तर्क, न्यायशास्त्र, व्याकरण और मतवाद की सीमा की जानकारी दी। उन्होंने कहा कि शैतान से होशियारी और अदम से मुहब्बत करो। कारण अथवा तर्क मुहब्बत द्वारा तय की गयी जन्नत जैसी ऊँचाई को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। रूमी कहते हैं— 'तर्क ऊँट को जोतता है और ऊँट आपको/ इस या उस राह ले जाता है/ इसे चाहे पसंद करो या न करो/ संत तर्कों के तर्क हैं/ वे मानो किसी रस्सी में/ आदमियों के तर्क का कारवाँ खींचते जा रहे हैं।'[28] तर्क के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन की परम्परा को बाद में फ़ारसी रहस्यवादी काव्य परम्परा में आगे बढ़ाया गया। उर्दू शायरी में भी उलेमाओं के उपदेश और युक्तीकरण के ख़िलाफ़ प्रतिवाद चल ही रहा था।[29]

रूमी का सबसे बड़ा योगदान संगीत और नृत्य पर उनके विचार थे जिसे 'समाँ' के नाम से जानते हैं— यह इस्लाम के मूल्यों के ख़िलाफ़ समझा जाता था। रूमी के लिए संगीत आध्यात्मिक जीवन में पुनरुत्थान के लिए लौकिक छत, प्रज्वलित होती इंसानी भावना का स्रोत और पोषण था। मुहब्बत में विरह से कविता उत्पन्न होती है और संगीत के विभिन्न रूप इसके दर्द का बयान करते हैं। संगीत की भाषा केवल मुहब्बत करने वाले को शैतानी प्रभाव की ओर इशारा करती हुई मालूम होती है तथा नृत्य में अपनी अभिव्यक्ति के लिए भावनाओं को प्रेरित करती हुई। नृत्य उल्लास की विभिन्न अवस्थाओं को प्रकट करता है।

इब्न अरबी रूमी के समकालीन और सूफ़ीवाद पर लिखने वाले दूसरे जाने-माने लेखक थे जिनकी रचनाएँ *फ़ुतुहत-अल-मक्किया* (मक्का के पर्दाफ़ाश की किताब) और *फ़ुसुत-अल-हिकाम* (बुद्धि की धार) सूफ़ीवाद के विद्वानों के बीच अच्छी तरह प्रचलित हैं। वे शैख अल-अकबर (महानतम अध्यापक) थे। लेकिन ठीक इसी समय सर्वेश्वरवाद और अद्वैतवाद को आईना दिखाती उनकी तीखी सोच के लिए उन पर हमला हुआ। अगर रूमी ने प्रत्येक ज़र्रे को मुहब्बत की छत के नीचे खींच लाने की भूमिका निभाई, तो इब्न अरबी ने ब्रह्माण्ड में स्थिरता देखने के लिए अपना आलोचनात्मक स्पेस

[24] एस.एच. नस्र (1999) : 38.
[25] एनेमेरी शिमेल : 137.
[26] फ्रेंकलिन डी. लेविस (2003) : 362-63.
[27] वही : 403.
[28] वही : 403.
[29] हरबंस मुखिया (2010).

मुहैया कराते हुए इन सभी को अल्लाह के नाम और गुण के तत्वमीमांसीय दायरे में धकेल दिया। इब्न अरबी के अनुसार अल्लाह समझ से परे है, लेकिन वह ख़ुद अपने नाम और प्रवृत्ति के माध्यम से प्रकट होता है। तर्क एक छोटा सा हथियार है जो दुनिया को सिर्फ़ श्रेणियों की शब्दावली में समझता है। इंसान में केवल उसका दिल है जो अल्लाह के नाम के रहस्य को अपने में रख सकता है— शारीरिक हुक़्म से मुक्त एक दिल। इस तरह का ख़ालीपन अल्लाह की शरण और नाम के स्मरण के माध्यम से सम्भव है अर्थात् ज़िक्र अल-अल्लाह। 'नमाज़ पढ़ो। बेशक नमाज़ बेहयाई और बुरे कामों से बाज़ आती है परंतु ख़ुदा का सुमिरन यक़ीनी बड़ा मरतबा रखती है' (क़ुरआन 2:45)।

अल्लाह को उतना ही जाना जा सकता है जितना वह अपने आपके बारे में बताता है। यदि मूसा ने अल्लाह को एक तरह से जाना, तो मुहम्मद ने किसी अन्य रूप में जाना। पैगम्बर अल्लाह को उस रूप में जानते थे जैसा उसने अपने आपको प्रकट किया, इसलिए पैगम्बरों के बीच फ़र्क़ नहीं किया जा सकता है। जो भी अस्तित्व में है या आ रहा है उसके ही नाम को प्रकट करता है। वफ़ादारी और दग़ाबाज़ी, मंदिर और मस्जिद, चर्च और सिनेगॉग, अच्छा और बुरा— सब कुछ तो उसी को बता रहे हैं। पैगम्बर और शैतान इंसानी दिल के प्यार के बहाव में बह गये जिसने वह आग पैदा की जिसमें सब कुछ घुल-मिल जाता है। द्विविभाजनों के ऐसे मेल-मिलाप की कई तरह से व्याख्या की गयी और प्राय: उसका उपहास भी उड़ाया गया। जैसा कि चिट्टिक बताते हैं, इब्न अरबी के आलोचकों ने अपने व्यक्तित्व में द्विभाजन को नहीं बल्कि स्वयं द्विभाजन से मुक्त होने का प्रयास किया।[30]

IV

पंद्रहवीं शताब्दी के बाद का सूफ़ीवाद

सूफ़ी सिलसिलों के आगमन ने सूफ़ीवाद की लोकप्रियता के लिए एक संगठित सांस्थानिक ढाँचा उपलब्ध कराया और यह पंद्रहवीं शताब्दी तक चलता रहा। सोलहवीं शताब्दी में तुर्की साम्राज्य और सफ़ाविद साम्राज्य का पतन हो गया। इसके अलावा विधिशास्त्रियों ने भी इसे किनारे लगाने में मदद की। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक यूरोपीय पुनर्जागरण अपनी पूरी रौ में था। इसका आगामी घटनाओं पर स्थायी प्रभाव पड़ा। यह अलग बात है कि सूफ़ीवाद के मूल्यों में पतन और क्षय का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक सूफ़ीवाद का चरित्र ही था। सूफ़ी सिलसिलों को बहुत अधिक मात्रा में धन मिला। यह परिघटना मिस्र में बहुत ज्यादा घटित हुई। यूरोप जिस समय सामाजिक, राजनीतिक उथल-पुथल से गुजर रहा था, वहाँ एक लोकप्रिय आंदोलन चला जो वहाबी आंदोलन के नाम में जाना जाता है। इसने इस्लाम की पुराने धर्मनिष्ठता की वापसी की वकालत की। उन्नीसवीं शताब्दी औपनिवेशिक विस्तार की सदी थी। उपनिवेशन के माध्यम से ईसाई धर्म के बढ़ते प्रभाव के साथ-साथ इस्लाम संतों के मतों के ख़िलाफ़ अधिक आक्रामक होता चला गया।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव यूरोप और इस्लामी दुनिया में लागू होने के दौरान भी सूफ़ीवाद जड़ से नहीं उखड़ा। यद्यपि मुसलमानों के सामुदायिक संगठनों में इसकी मुख्य भूमिका कमज़ोर थी, पर उत्तरी अफ़्रीका में यह समृद्ध हो रहा था। उधर मिस्र और तुर्की राज्य ने सूफ़ी समाज पर भूमि की ज़ब्ती, संगीत और शक्ति के एकीकरण पर प्रतिबंध जैसे कठोर क़दम उठाए। बीसवीं शताब्दी में मानवशास्त्र और समाजशास्त्र जैसे विषयों के विकास के साथ ऐतिहासिक दृष्टिकोण को दरकिनार कर दिया गया। अगर ऐसा न होता तो धार्मिक या राजनीतिक शक्तियों के सहायक के रूप में न सही, सूफ़ीवाद कम से कम भूमिगत सिलसिलों की तरह महत्त्वहीन

---

[30] विलियम सी. शिटिक (1999) : 205.

नहीं हुआ होता। फिर भी रेनो ब्रुनेट, क्लिफ़र्ड गीर्ज, अर्नेस्ट गेल्नर और जे.के.बिर्ग के अध्ययनों से उनकी निरंतरता के बारे में पता चलता है।[31] जनसंचार के माध्यमों के तेज़ी से फैलने तथा वैश्विक दुनिया के उद्घाटन के साथ सूफ़ी गीत-संगीत का शौक़ बढ़ा है। सूफ़ी संतों के उर्स के दौरान क़व्वाली का गायन देखा जा सकता है। रूमी, अमीर ख़ुसरो, बुल्ले शाह के काव्य श्रोताओं को भावनाओं में डुबो देते हैं तथा सूफ़ी संतों के मज़ारों पर लगने वाले मेले वाचिक और लिखित, दोनों इतिहासों में लोकप्रिय रहे हैं।

सूफ़ी सिलसिलों का उदय

भारत में सूफ़ीवाद के सिलसिलों के गहन होते जाने के लिए ज़िम्मेदार कारकों का अभी ठीक से विश्लेषण नहीं हुआ है। उनके बारे में अभी भी अटकलें लगाई जाती हैं। सूफ़ी सिलसिलों पर ट्रिमिंघम की किताब *सूफ़ी ऑर्डर इन इस्लाम* जानकारी का भण्डार है, लेकिन यह रचना सामाजिक हेतु विज्ञान की सही व्याख्या नहीं कर पाती है।[32] उनके अनुसार सूफ़ी सिलसिले हठधर्मिता और तत्वमीमांसा के बीच उत्पन्न खींचतान से पैदा हुए। मतवादी जनों और रौशन ख़याल लोगों के बीच संघर्ष हुआ। जिस रास्ते पर रौशन ख़याल लोग चले, उसे मतवादी इस्लाम के लिए अपमानजनक मानते थे। हालाँकि एनेमेरी शिमेल सूफ़ी सिलसिलों के उत्पत्ति के पीछे सूफ़ीवाद की बढ़ती लोकप्रियता को प्रमुख कारक मानती हैं। दसवीं शताब्दी तक सूफ़ीवाद अपने उफ़ान पर था और लोगों ने जब एक बार इसकी ख़ुशबू महसूस की, तो उनका उतावलापन उन्हें सिलसिलाबद्ध संगठनों तक ले गया। शिमेल पाल निविया के शोध का हवाला देते हुए कहती हैं कि इसका उद्गम उस साझे दर्शन में समाहित था जिसमें न केवल भौतिक चीज़ें शामिल थीं बल्कि उसमें आध्यात्मिक समृद्धि का तत्त्व भी उपस्थित था।[33]

शिमेल के मुताबिक़ दूसरा कारक पंद्रहवीं शताब्दी में आक्रमणकारी मंगोलों द्वारा इराक़ का अधिग्रहण हो सकता है। यह एक ऐसी घटना थी जिसने रहस्यवाद को इस्लामी दुनिया के अन्य भागों में बढ़ने के लिए ढकेल कर उसकी मूल सुगंध और तीव्रता को उखाड़ फेंका।[34] सैयद हुसैन नस्र की राय इन विद्वानों से अलग है। उनके अनुसार मुस्लिम समुदाय अवतारवाद के तत्त्वमीमांसीय आयाम से दूर जा रहा था अर्थात् पवित्र क़ुरआन और संगठनों की अनिवार्य बनावट की तरफ़ जो गूढ़ सिद्धांतों को परिभाषित कर सके तथा आचार संहिता के साथ-साथ आध्यात्मिक नेतृत्व भी प्रदान कर सके। इस ज़रूरत से सूफ़ी सिलसिले धीरे-धीरे दुनिया भर में फैल गये।[35] दसवीं शताब्दी में कालाबाधी द्वारा लिखी किताब *अल-तवारुफ़* किसी भी सिलसिले के बारे में नहीं बताती। लेकिन ग्यारहवीं शताब्दी में लिखी गयी *कश्फ़ुल महजुब* में हुजवेरी ने बारह सम्प्रदायों का उल्लेख किया जिसमें वे अवतारवाद के कारण दो सम्प्रदायों को नकार देते हैं।[36] इस तरह सूफ़ी सिलसिलों ने दूसरे क्षेत्रों में इसे संगठित तरीके से फैलाने के लिए अपने-आपको संस्थाबद्ध मंच उपलब्ध कराए।

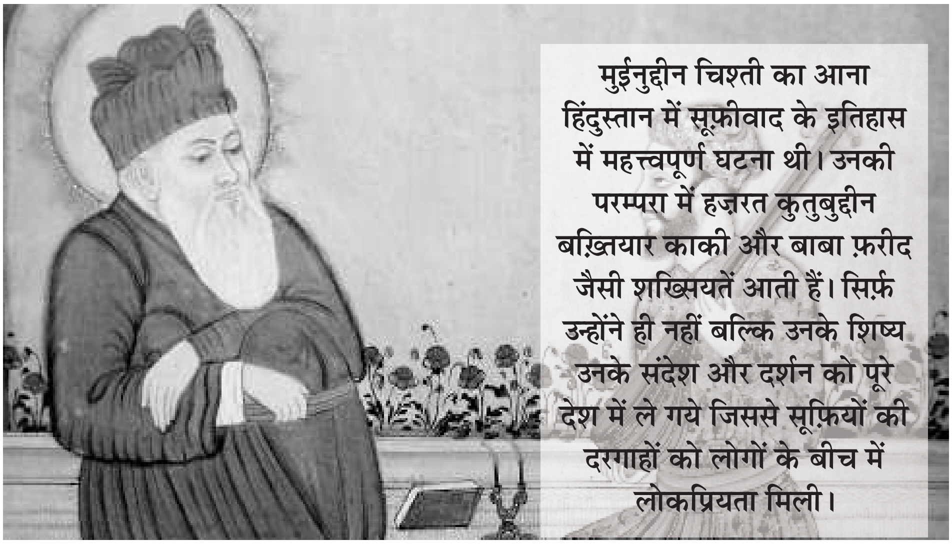
V

हिंदुस्तान में सूफ़ीवाद

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में सूफ़ियों का हिंदुस्तान आना शुरू हो गया था। लेकिन मुईनुद्दीन चिश्ती का

---

[31] जूलियन बाल्डीक (2012).
[32] ट्रिमिंघम (1998).
[33] एनेमेरी शिमेल : 228-44.
[34] एनेमेरी शिमेल, वही.
[35] सैयद हुसैन नस्र (1991) : 3-4.
[36] हुजवेरी, वही : 153.



आना हिंदुस्तान में सूफ़ीवाद के इतिहास में महत्त्वपूर्ण घटना थी।[37] उनकी परम्परा में हज़रत कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी और बाबा फ़रीद जैसी शख़्सियतें आती हैं। सिर्फ़ उन्होंने ही नहीं बल्कि उनके शिष्य उनके संदेश और दर्शन को पूरे देश में ले गये जिससे सूफ़ियों की दरगाहों को लोगों के बीच में लोकप्रियता मिली। क़ादिरी, शत्तारिया, नक़्शबंदी, चिश्तिया, सुहरावर्दी और फ़िरदौसिया सिलसिले थोड़े बहुत उतार-चढ़ाव के साथ देश के विभिन्न हिस्सों में फले-फूले। सिंध और कच्छ के इलाक़ों[38] से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश के अंदरूनी इलाक़ों की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कल्पना में शामिल होने में उन्हें देर न लगी। जैसा कि अबुल फ़ज़ल ने लिखा है कि अकबर के शासन काल में 14 सिलसिले और 52 प्रतिष्ठित सूफ़ी संत थे।[39]

अकबर के शासनकाल से पहले ही सूफ़ीवाद हिंदुस्तान के लगभग हर हिस्से में इस्लाम का एक प्रतिष्ठित आयाम बन चुका था। यदि तेरहवीं शताब्दी हिंदुस्तान में सूफ़ीवाद की लोकप्रियता का शुरुआती दौर था, तो चौदहवीं शताब्दी इसके सुदृढ़ीकरण के लिए जानी जाती है। शेख निज़ामुद्दीन औलिया, जिनका निधन 1325 में हुआ, के शिष्यों में अमीर ख़ुसरो और अमीर हसन सिज्जी जैसे कवियों का नाम था। सुहरावर्दी सिलसिले ने बंगाल में तथा फ़िरदौसिया ने बिहार में ज़बरदस्त प्रभाव जमाया। जब 1359 में फ़िरोज शाह तुगलक ने उत्तर भारत में विस्तार के लिए जौनपुर को केंद्र बनाया तो उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकांश भाग सूफ़ीवाद के प्रभाव में आ गये। संगीत कार्यक्रमों, सूफ़ियों की उदार सोच, धार्मिक मेल-जोल ने हिंदुओं को भी प्रभावित किया। वैसे भी भक्ति आंदोलन पंद्रहवीं शताब्दी में पहले ही हिंदू धर्म और इस्लाम की धार्मिक कट्टरता की मुखरता से निंदा कर चुका था और वैकल्पिक तथा व्यक्तिवादी तरीक़ों से अल्लाह को जानने का मार्ग प्रशस्त कर रहा था।

दूसरा मंसूर : फाँसी की रस्सी और तलवार

मुहब्बत और मंसूर की फाँसी ने भविष्य के बहुत सूफ़ियों को आंतरिक ख़ुशी की ओर मोड़ा, लेकिन यह प्याला लबालब भरा नहीं था। सूफ़ियों के लिए जन्नत और इतिहास दोनों प्रतिकूल थे।

---

[37] एन.आर. फ़ारूक़ी : वही.

[38] हसन अली खान (2016).

[39] अबुल फ़ज़ल (1989) : 388-423.

परिणामस्वरूप 922 के बाद मंसूर की हत्या ने सूफ़ीवाद की प्रगति को और धीमा कर दिया। लेकिन, अंतत: इतिहास को अल्लाह का हुक़्म मानना ही था और सरमद ने 1662 में दिल्ली की जामा मस्जिद के अहाते में मंसूर की शहादत को दोहराया। इसका नतीजा क्या निकला? मुहब्बत हार गयी और मस्जिद जीती? वास्तव में मुहब्बत जीती और आगे बढ़ी, और मस्जिद स्थिर रही। सरमद की दरगाह हिंदुओं और मुसलमान दोनों को एक करती है, जबकि मस्जिद कुछ ख़ास लोगों के लिए ही बनी रही। सरमद की दरगाह समुद्रों का संगम बन गयी जिसकी दाराशिकोह ने बेहद प्रशंसा की है।

ईरान के कशान में एक यहूदी परिवार में पैदा हुआ सरमद अपने धर्म के ग्रंथों में निपुण थे। उन्होंने इब्राहीम शीराजी और अब्दुल क़ासिम फिंदरक्सी की देखरेख में इस्लाम का अध्ययन किया। 1632–1633 में वे हिंदुस्तान पहुँचे और व्यापार शुरू करने के लिए थट्टा में रुके। यहाँ रहते हुए उन्होंने एक हिंदू लड़के अभय चंद को देखा और उसके प्यार में पड़ गये। उसके सौंदर्य में आनंद विभोर होकर उन्होंने अपने आपको उस लड़के की 'मुहब्बत' में डुबो दिया। अभय चंद के परिजनों ने जब उसे सरमद को देने से इंकार कर दिया तो उन्होंने अपने शरीर के सारे कपड़े उतार फेंके। सरमद के लिए अल्लाह कहीं था तो सिर्फ़ अभय चंद में ही था— तुम जिधर घूमते हो, वहाँ अल्लाह का चेहरा है (क़ुरआन, 2:115)। यदि रूमी शम्स तबरेज़ में अल्लाह को देख सकते थे तो सरमद अभय चंद में क्यों नहीं? हिंदुस्तान के कई हिस्सों में घूमने के बाद 1654 में वे दिल्ली पहुँचे। अध्यात्म-विद्या के जिज्ञासु दाराशिकोह सरमद से मिले और फिर दोनों में नियमित मेल-मुलाक़ातें होने लगीं। इसी बीच मौलवियों ने औरंगज़ेब का नज़रिया सरमद के खिलाफ़ कर दिया। उन पर बाक़ायदा जाँच बैठाई गयी। सरमद तीन आधारों पर इस्लामी शरीयत को उपेक्षित करने के दोषी पाए गये। पहला आधार यह था कि सरमद ने निम्न रूबाई में पैगम्बर पर आपत्तिजनक टिप्पणी करते हुए आरोप लगाया है—

जो वास्तविकता का रहस्य समझ गया
वह विशाल स्वर्ग से भी बड़ा हो गया।
मुल्ला कहते हैं कि मुहम्मद जन्नत को पार कर गया
सरमद कहता है कि जन्नत मुहम्मद को पार गयी।[40]

दूसरा, सरमद का नंगा रहना शरीयत के ख़िलाफ़ पाया गया। सरमद के ख़िलाफ़ तीसरा इल्जाम था कि वे क़लमे के शुरुआती दो शब्द ही पढ़ते थे। बाद में वे विधर्मी आचरण के कारण फाँसी पर चढ़ा दिये गये। इक्कीसवीं शताब्दी में अरुंधती राय ने अपने उपन्यास *द मिनिस्ट्री ऑफ़ अटमोस्ट हैप्पीनेस* की कथाभूमि सरमद की इसी कहानी के इर्द-गिर्द बुनी। उसका शीर्षक भी सरमद के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। वास्तव में सरमद ने इस्लाम का त्याग कर दिया तो उन्हें मौत की सज़ा दी गयी, लेकिन क्या करें दिल्ली की जनता की उस याददाश्त का जिसने उन्हें शहीद का दर्जा दिया और उनके मज़ार पर मन्नत पुर्ज़ियाँ बाँधने लगी। यह एक प्रकार से बादशाह के हुक़्म के ख़िलाफ़ उसकी रियाया की फ़ितनागरी थी। जनता ऐसा हमेशा करती रहती है। उसने तब भी ऐसा किया था।[41]

सरमद पर लिखते हुए मौलाना आज़ाद ने इस्लाम के इतिहास को आड़े हाथों लिया है। उन्होंने लिखा है कि इस्लाम की तेरह शताब्दियों में विधिशास्त्रियों की क़लम नंगी तलवार बन गयी। उनके फ़ैसलों पर सच्चाई से प्यार करने वाले हज़ारों लोगों के ख़ून के धब्बे हैं। किसी भी दृष्टिकोण से आप इस्लाम का इतिहास पढ़िए, अनगिनत उदाहरण बताएँगे कि कब और कैसे जब भी एक शासक ख़ून बहाने पर उतरा, मुफ़्ती की क़लम और एक सेनापति की तलवार ने उसे बराबर सहयोग दिया। यह सिर्फ़ सूफ़ियों और शरफ़ों तक सीमित नहीं था, जो उलेमा सत्य और वास्तविकता की बात करने वाले

---

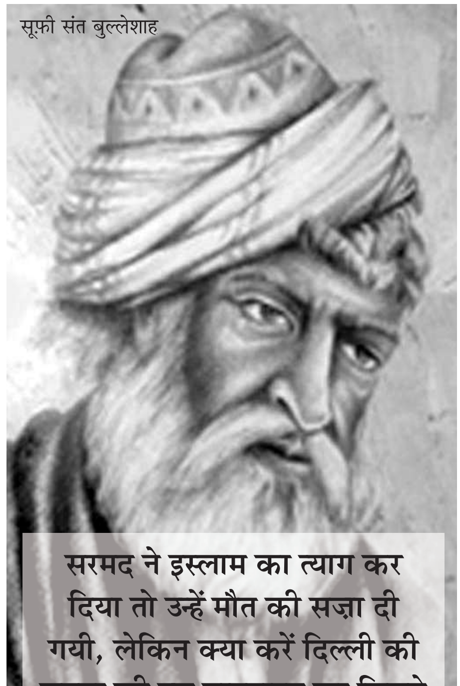
[40] वी.एन. दत्ता (2007) : 15.

[41] रमाशंकर सिंह (2007) : http://thewirehindi.com/12820/the-ministry-of-utmost-happiness-by-arundhati-roy/ 31 मार्च, 2018 को देखा गया.

संतों के क़रीब थे, उन्हें भी विधिशास्त्रियों के हाथों से पीड़ा उठानी पड़ी और अंत में जान 'दे' कर ही उन्हें छुटकारा मिला। सरमद भी उसी तलवार से मारे गये।[42] अब वे हड़कंप मचाने के बजाय सोने के लिए जा चुके थे—

समुद्र का रहस्य
मैंने इसे बिजली की गड़गड़ाहट के साथ कहा
एक थके-माँदे बादल के हिस्से पर
मैं सो गया, अब मुझे कोई हिला नहीं सकता।[43]

सरमद की मौत सूफ़ीवाद की ऐतिहासिक प्रगति नहीं रोक पाई और न ही सूफ़ियों द्वारा चरमानंद के प्रदर्शन रुके। बुल्लेशाह की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ आज भी सूफ़ियों की दरगाहों पर संगीतात्मक रूप में गूँज रही है।[44] सरमद शाश्वत नींद में सो गये, लेकिन उन्होंने अपने पीछे जो सवाल छोड़े उनका जबाव जब भी माँगा जाता है तो मोहम्मद शहीदुल्लाह और अमजद साबरी को अपनी जान देनी पड़ जाती है। आज पूरी दुनिया में चरमपंथ का उभार दिख रहा है। यह चरमपंथ किसी धर्मग्रंथ की शिक्षा लागू करने के लिए नहीं है। इस चरमपंथ की आड़ में दुनिया के सबसे बेहतरीन संग्रहालयों की बेशक़ीमती चीज़ों को बेच कर पैसा बनाया जा रहा है। धर्म की आड़ ले कर स्त्रियों को अगवा करके उनका बलात्कार किया जा रहा है। पूरी दुनिया में सूफ़ी संतों ने देह और धन की नश्वरता के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई थी। इसीलिए उनकी परम्परा में आने वाले लोग मार दिये जा रहे हैं। उन्होंने मुहब्बत की बात की, दिल की दुनिया की बात की जहाँ रूह अपने को आज़ाद महसूस कर रही थी। उस समय भले ही आज की तरह जनतंत्र का विचार नहीं था, लेकिन सूफ़ी संतों ने मनुष्य की निजता और उसकी मुक्ति की बात की। उन्हें ऐसा करने के लिए उस समय फाँसी पर चढ़ाया गया। आज वे लोग चरमपंथियों के निशाने पर हैं जो मनुष्यता, प्यार-मुहब्बत और आज़ादी की बात करते हैं।


सूफ़ी संत बुल्लेशाह

सरमद ने इस्लाम का त्याग कर दिया तो उन्हें मौत की सज़ा दी गयी, लेकिन क्या करें दिल्ली की जनता की उस याददाश्त का जिसने उन्हें शहीद का दर्जा दिया और उनके मज़ार पर मन्नत पुर्ज़ियाँ बाँधने लगी। यह एक प्रकार से बादशाह के हुक़्म के ख़िलाफ़ उसकी रियाया की फ़ितनागरी थी।

संदर्भ

अल् बिन उस्मान अली-हुजवेरी (तिथिरहित), (अंग्रेज़ी अनु.) आर.ए. निकलसन, एडम पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.
अबुल फ़ज़ल (1989), *आईने अकबरी,* भाग-3, लो प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली.
इ.एच. विनफ़ील्ड (1880), *महमूद शबिस्तरी, गुलशन-ए-राज* (अनुवाद), ट्रबनर ऐंड कम्पनी, लूगेट.
ए.जे. आरबेरी (2007), *केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इस्लाम,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

[42] वी.एन. दत्ता (2007) : 14.
[43] रूमी : 631.
[44] क्रिस्टोफ़र शेकल (2015).

एन.आर. फ़ारूक़ी (2007), *सूफ़ीइज़्म ऐंड डिप्लोमेसी इन मेडिवल इण्डिया,* लिबरॉन प्रेस, इलाहाबाद.

एन.आर. फ़ारूक़ी (2014), *सूफ़ीवाद : कुछ महत्त्वपूर्ण लेख,* ओरयंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली.

एनेमेरी शिमेल (1975), *मिस्टिकल डाइमेंशंस ऑफ़ इस्लाम,* युनिवर्सिटी ऑफ़ नार्थ कैरोलीना प्रेस, न्युयॉर्क.

----------(1994), 'सन इन मिडनाइट', डियोज़ेनस, अंक 165.

एस.ए.ए. रिजवी (1978), *हिस्ट्री ऑफ सूफ़ीइज़्म इन इण्डिया,* मुंशीराम मनोहरलाल, भाग–1, नयी दिल्ली.

क्रिस्टोफ़र शेकर (2015), *बुल्लेशाह, मूर्ति क्लासिकल लाइब्रेरी,* हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

गीता धर्मपाल–फ़िक्र और अन्य (2015), *की कांसेप्ट इन मॉडर्न इण्डियन स्टडीज़,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

जूलियन बाल्डीक (2012), *मिस्टीकल इस्लाम : एन एंट्रोडक्शन टू सूफ़ीइज़्म,* आई.बी. टॉरस, लंदन.

ट्रिमिंघम (1998), द *सूफ़ी ऑर्डर्स इन इस्लाम,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

पॉल लॉसेंस्की (2009), *फ़रीदुद्दीन अत्तार्स मेमोरियल ऑफ़ गॉड्स फ्रेंड्स : लाइव्ज़ ऐंड सेयिंग्स ऑफ़ सूफ़ीज़,* पॉलिटी प्रेस, न्युयॉर्क.

फ़रीदुद्दीन अत्तार (2009), *अत्तार्स मेमोरियल ऑफ़ गाड्स फ्रेंड्स,* अनु. पॉल लॉसेंस्की, पॉलिटी प्रेस, न्युयॉर्क.

फ्रैंकलिन डी. लेविस (2003), *रूमी,* वनवर्ड, ऑक्सफ़र्ड.

बर्नार्ड कॉह्न (2011), 'द कमाण्ड ऑफ़ लैंग्वेज एण्ड द लैंग्वेज ऑफ़ कमाण्ड', *सबाल्टर्न स्टडीज़,* (सं.) रणजीत गुहा, खण्ड 6, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

मार्गरेट स्मिथ (2010), *राबिया बसरी,* अदम पब्लिशर्स ऑफ़ ऐंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली.

रेनॉल्ड ए. निकल्सन (1995), *रूमी–पोएट ऐंड मिस्टीक,* वनवर्ड, ऑक्सफ़र्ड.

लुई मासिओ (1983), द *पैशन ऑफ़ अल हल्लाज,* प्रिंस्टन युनिवर्सिटी प्रेस, भाग–1.

विलियम सी. शिटिक (1999), 'स्पेक्ट्रम्स ऑफ़ इस्लामिक थॉट इन लेविशॉन', *द हेरिटेज ऑफ़ सूफ़ीइज़्म,* भाग 2, वनवर्ड ऑक्सफ़र्ड.

वी.एन. दत्त (2007), *मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ऐंड सरमद,* रूपा ऐंड कम्पनी, नयी दिल्ली.

सैयद हुसैन नस्र (1991), *इस्लामिक स्प्रिचुएलिटी,* भाग 2, द क्रास रोड पब्लिशिंग कम्पनी, न्युयॉर्क.

-----------(1999), सूफ़ी एस्सेज़, एबीसी इंटरनेशनल ग्रुप.

हरबंस मुखिया (2010), द *सेलिब्रेशन ऑफ़ फेल्योर एज़ डिसेंट इन उर्दू ग़ज़ल,* आकार पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.

हसन अली ख़ान (2016), *कंस्ट्रक्टिंग इस्लाम ऑन द इंडस : द मैटेरियल हिस्ट्री ऑफ़ द सुहरावर्दी सूफ़ी ऑर्डर,* 1200–1500 एडी, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.